# जीने का उद्देश्य

**– आचार्य महाश्रमण –**

जीवन एक सच्चाई है। संसार का प्रत्येक प्राणी जीवन जीता है मगर जीने–जीने में बहुत अन्तर होता है। महत्वपूर्ण बात यह नहीं होती कि कौन व्यक्ति कितना जीवन जीता है? महत्वपूर्ण बात यह होती है कि कौन व्यक्ति कैसा जीवन जीता है? जीने का भी एक उद्देश्य होता है। चिंतनशील व्यक्ति को अपने जीवन का लक्ष्य–निर्धारण अवश्य करना चाहिए। स्वामी विवेकानंद ने कहा–'लक्ष्य को ही अपना जीवन–कार्य समझो। हर समय उसी का चिंतन करो, उसी का स्वप्न देखो और उसी के सहारे जीवित रहो।' जो व्यक्ति लक्ष्यपूर्वक जीवन जीता है वह अधिक सफल होता है। सबके जीवन का लक्ष्य समान हो, यह आवश्यक नहीं। भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में और भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में जीने वाले व्यक्तियों के लक्ष्य भी भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का एक लक्ष्य हो, यह भी जरूरी नहीं। अनेक व्यक्तियों का एक लक्ष्य भी हो सकता है और एक व्यक्ति के अनेक लक्ष्य भी हो सकते हैं।

अध्यात्म के आचार्यों ने जीवन का एक लक्ष्य निर्दिष्ट किया–आत्मशोधन। आत्मा की शुद्धि के लिए अध्यात्म/धर्म की आराधना की जाती है। धर्म की साधना करने के लिए महत्त्वपूर्ण साधन बनता है शरीर। जब तक शरीर स्वस्थ है यानी जब तक बुढ़ापा नहीं आता, व्याधियां नहीं बढ़तीं और इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती, तब तक धर्म का आचरण किया जा सकता है। प्रश्न उपस्थित हुआ, व्यक्ति शरीर को धारण क्यों करे? उत्तराध्ययन सूत्र में समाधान दिया गया–पूर्व कर्मों के क्षय के लिए ही इस शरीर को धारण करे। शरीर को धारण करने का और उसको उचित आहार से पुष्ट रखने का एकमात्र उद्देश्य है कि पूर्व–संचित कर्मों का क्षय किया जा सके और संयम की साधना से नए कर्मों को रोका जा सके। शरीर–धारण का यह एक आध्यात्मिक लक्ष्य है। शरीर को बनाए रखने के लिए अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है। उनमें एक है–भोजन। भोजन शरीर को पुष्ट रखने और टिकाने के लिए अतिआवश्यक है। भोजन के बिना कुछ समय तो जीवन जीया जा सकता है, पर लम्बे समय तक नहीं जीया जा सकता। जीवन चलाने के लिए भोजन करना आवश्यक है, किन्तु भोजन के साथ विवेक भी

आवश्यक होता है। कब, किस समय, क्या, कितना और कौनसा भोजन करना चाहिए, यह व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है।

उपवास यदि निर्जरा का समाधान बनता है तो भोजन भी निर्जरा का साधन बन सकता है। बशर्ते भोजन का उद्देश्य स्पष्ट हो। जीने के लिए भोजन किया जाए। भोजन के लए न जीया जाए। निर्जरा के बारह प्रकार बताए गए हैं। उनमें पहला भेद है–अनशन। अनशन के दो प्रकार प्रज्ञप्त हैं–इत्वरिक और यावत्कथिक। वर्तमान काल के परिप्रेक्ष्य में उपवास से लेकर छह महीनों तक की जो तपस्या की जा सकती है, वह इत्वरिक अनशन कहलाता है। जीवनपर्यन्त के लिए जो अनाहार की साधना स्वीकार की जाती है, वह यावत्कथिक अनशन कहलाता है। अनशन की साधना सबके लिए स्वीकार्य नहीं हो सकती। हालांकि मेरा तो यह मन्तव्य है कि उपवास जिस व्यक्ति के लिए अनुकूल रहे, उसे उपवास या कुछ दिनों के लिए एकांतर अवश्य करना चाहिए। किन्तु जिन व्यक्तियों के लिए उपवास अनुकूल नहीं रहता। उनके लिए ऊनोदरी तप बड़ा लाभदायी होता है। किसी ने पूछा कि पाचक दवा कौनसी होती है? उत्तर दिया गया कि सबसे अच्छी पाचक दवा ऊनोदरी तप होता है। खाने में संयम रहेगा तो पाचन अपने–आप ठीक होगा। यह ऊनोदरी का तप और भी अनेक दृष्टियों से लाभदायी होता है। स्वाध्याय, इन्द्रिय– संयम, कषाय–शमन आदि की साधना में ऊनोदरी योगभूत बनती है। इस प्रकार भोजनशास्त्र और धर्मशास्त्र में भोजन के विषय में अनेक नियम, उपनियम व्याख्यात हैं।

भोजन के विषय में पहला नियम तो यह होना चाहिए कि साधक की भोजन के प्रति आसक्ति न हो। क्योंकि खाद्य असंयम का मूल कारण है खाद्य पदार्थ के प्रति आसक्ति होना। आसक्ति नहीं है तो संयम अपने–आप सध जाता है। भोजन का दूसरा नियम यह होना चाहिए कि व्यक्ति भोजन करने में जल्दबाजी न करे। धीरे–धीरे अच्छी तरह चबा–चबा कर भोजन करे। ग्रास भी छोटा ले। जल्दी–जल्दी भोजन करने से खाने में असंयम भी हो सकता है और पाचन की दृष्टि से भी कठिनाई पैदा हो सकती है। इसलिए जो व्यक्ति धीरे–धीरे चबा–चबा कर खाता है, उसे तीन लाभ होते हैं–खाने में संयम होता है, आंतों को श्रम कम करना पड़ता है और योग साधना भी हो जाती है। भोजन के सम्बन्ध में तीसरा नियम यह होना चाहिए कि भोजन करते समय दिमाग में कोई अन्य विचार नहीं रखना चाहिए। भोजन करने से पूर्व खाद्य पदार्थ का निर्णय किया जा सकता है, पर आहार करते समय दिमाग में

यह चिंता नहीं रहनी चाहिए कि मैं अमुक पदार्थ का सेवन कर रहा हूं। इससे मेरे वात, पित्त या कफ का प्रकोप बढ़ जाएगा। विवेकपूर्वक निर्णय के बाद आदमी निश्चिंत होकर भोजन करें। भोजन के दौरान हंसी–मजाक व बातें भी न करें। बार–बार न खाएं। सामान्यतया मध्याह्नकालीन भोजन के बाद सायंकालीन भोजन तक पानी के अतिरिक्त कुछ भी खाना नहीं चाहिए। भोजन का अवस्था के साथ भी गहरा सम्बन्ध होता है। प्रायः चालीस वर्ष के बाद तला भोजन और पचास वर्ष के बाद मिठाई आदि नहीं खानी चाहिए। कभी–कभी नमक–परिहार और अन्न–परिहार का प्रयोग भी करना चाहिए।

इस प्रकार पवित्र भावना के साथ जागरूकतापूर्वक भोजन किया जाए तो स्वास्थ्य का लाभ होता है और साधना पुष्ट बनती है। स्वाद के लिए खाना अज्ञान, जीने के लिए खाना आवश्यकता और संयम की रक्षा के लिए खाना साधना है। साधक अपनी कर्म–निर्जरा और आत्मशुद्धि के लिए जीवन जीता है और जीवन रूपी गाड़ी को चलाने के लिए भोजन करता है। स्पष्ट लक्ष्य के साथ जीने वाला व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक और सुफल बना सकता है।